लोकमत समाचार
बुधवार, 18 मई 2016

बोझ से आक्रांत होती शिक्षा

गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

सभ्य समाजों में सीखने और सिखाने की कोशिश मूलतः अच्छे मनुष्य के निर्माण से जुड़ी है. इसके महत्व को देख कर विद्यालय संस्था का निर्माण किया गया. आधुनिक भारत में शिक्षा कैसी हो इसके लिए हम पूरी औपचारिक गंभीरता के साथ राधाकृष्णन और डी. एस. कोठारी जैसे शिक्षाविदों को लेकर आयोग बैठाते रहे, शिक्षा नीति बनाने की कवायद करते रहे. इनकी रपटें और ऐसे ही तमाम देसी विचारकों के योगदान के बावजूद शिक्षा का मुद्दा उपेक्षित ही बना रहा. श्यामपट्ट अभियान और सर्व शिक्षा अभियान चले, शिक्षा शुल्क (सेस) लगाया गया ताकि संसाधन जुटें, पर शिक्षा की स्थिति कई अर्थों में विकराल होती गई और आज शिक्षा के क्षेत्र में पहुंच, भागीदारी और गुणवत्ता को लेकर भयानक असमानता की स्थिति पैदा हो रही है. इस पर विचार करना आवश्यक है और राजनीतिक नेतृत्व को इसे गंभीरता से लेना होगा. जो बच्चे और युवा शिक्षा के लिए आ रहे हैं और जो उससे वंचित रह जा रहे हैं या खराब शिक्षा की बड़ी कीमत अदा कर रहे हैं उनकी कुंठा समाज के स्वास्थ्य के लिए कठिन चुनौती बन रही है.

आज जब भी शिक्षा की चर्चा छिड़ती है तो हमारे सामने एक विचित्र तरह का अंतर्विरोध उपस्थित होता है. वह अंतर्विरोध यह है कि हम चाहते कुछ हैं और करते कुछ हैं. एक कथा है कि कोई शिल्पकार छेनी से गणेशजी की मूर्ति बना रहे थे. मूर्ति के आकार में थोड़ी गड़बड़ दिखी. शिल्पकार ने सोचा कि आगे चल कर ठीक कर लेंगे. पर बात बनी नहीं और आकृति कुछ और बेडौल हो गई. शिल्पकार को अपने कौशल पर बड़ा भरोसा था. सोचा कि एक छेनी और मार कर ठीक कर लेंगे, ऐसा करते-करते अंत में गणेशजी तो नहीं बने हां, एक वानर की मूर्ति जरूर बन गई. हम सब लोग चाहते हैं कि शिक्षा से बड़े-बड़े उद्देश्य पूरे हों और इसके लिए अनेक तौर-तरीकों को अपनाते हैं. पर अब एक तरफ स्मार्ट क्लास और वर्चुअल क्लास रूम बन रहे हैं तो दूसरी तरफ कक्षाहीन, अध्यापकविहीन, पुस्तकरहित विद्यालय भी चल रहे हैं. शिक्षा राम भरोसे ही चल रही है. सच्चाई यह है कि हम अपने चलने के लिए जो रास्ता चुनते हैं वही यह निश्चित करता है कि हम गंतव्य तक पहुंचेंगे या नहीं. यदि हमारा पथ कुछ हो और इरादा कुछ और तो हम पहुंचते वहां हैं जो कोई और ही अपरिचित जगह होती है. वहां से न लौटना बनता है न आगे बढ़ना. तब हम ठहर जाते हैं. भारतीय शिक्षा के साथ भी यही हुआ है.

हम सामान्य स्तर की भी शिक्षा देने में सफल नहीं हो पा रहे हैं. यह विचार की बात है कि ऐसा क्यों नहीं हो पा रहा है. नीचे से ऊपर तक पढ़ाई में बहुत सा अनावश्यक बोझ हम ढोते चले जा रहे हैं.

आज शिक्षा के नाम पर पढ़ने-पढ़ाने की पद्धति, परीक्षा की पद्धति और शैक्षिक परिसर की आबोहवा- यदि इन सब पर गौर करें तो लगेगा कि इससे गुजरना एक ऐसी जटिल भूलभुलैया से गुजरने जैसा है जहां न हवा के लिए झरोखा है और न प्रकाश के लिए रोशनदान. वहां से निकलने वाली चीख भी नहीं सुनी जाती. हमारे अपने तंत्र की अपनी मुश्किलें और पेचीदगियां हैं और हम निरुपाय हैं. दिल्ली विश्वविद्यालय के परिसर के आसपास हमारा ख्याल है कि हजारों युवा कोचिंग की तैयारी करने के लिए रह रहे हैं. वहां तरह-तरह के कोचिंग सेंटर चल रहे हैं जो आई.ए.एस और नेट सभी तरह की परीक्षा की कोचिंग दे रहे हैं. अर्थात जो शिक्षा मिल रही है वह उनको उसका पात्र नहीं बनाती जो वे चाहते हैं. मुझे सन 67-68 की एक बात याद आती है. हमारा एक भांजा था उसने बी.एस.सी. किया था और केवल उसी के अंक के आधार पर बीएचयू में बी.टेक. में दाखिला मिल गया था. अब वह एक बड़ा इंजीनियर होकर सेवानिवृत्त हुआ है.

शिक्षा समाज के लिए है और वह समाज में ही अवस्थित है. पर आज तरह-तरह के दबाव हमारे सामने हैं. भूमंडलीकरण का भी दबाव बढ़ रहा है और विश्वस्तरीय शिक्षा देने की चिंता बढ़ रही है. पर हम सामान्य स्तर की भी शिक्षा देने में सफल नहीं हो पा रहे हैं. यह विचार की बात है कि ऐसा क्यों नहीं हो पा रहा है. आधारभूत संरचना की और व्यवस्थागत कमजोरियों की बात बड़ी स्पष्ट है. मैं उसकी नहीं एक आंतरिक समस्या की ओर ध्यान दिलाना चाहूंगा. यह समस्या सीखने के भार की है. नीचे से ऊपर तक पढ़ाई में बहुत सा अनावश्यक बोझ हम ढोते चले जा रहे हैं. बहुत सारा समय, ऊर्जा और संसाधन उन चीजों को पढ़ने में जाया किया जाता है जो किताब के लिए ठीक, उसकी परीक्षा के लिए ठीक पर समाज के लिए या अपने परिवेश के लिए ठीक भी है या नहीं यह अस्पष्ट है. विद्यालय के बाहर की दुनिया में विद्यालय में अर्जित ज्ञान के उपयोग में मुश्किल होती है. जब चश्मे का नंबर बदल जाता है तो बाहर की दुनिया कुछ और ही दिखती है जबकि वास्तविकता कुछ और ही रहती है. यह दुखद है कि हमलोग अपने पाठ्यक्रमों में उन भारतीय परिस्थितियों से दिमागी तौर पर भी बहुत दूर जा चुके हैं. प्राचीन ज्ञान की बात छोड़ दें आधुनिक समाज की जो ताजी समस्याएं हैं उससे भी दूर जा चुके हैं क्योंकि वह वैश्विक महत्व का नहीं है. वैश्विक महत्व का तो सिर्फ पश्चिमी ज्ञान है.

हमें अपने अंदर झांकने की जरूरत है. हमको दूसरा क्यों परिभाषित करे? क्यों हम दूसरे के आईने में अपने को देखें? प्रामाणिकता के लिए हमें अपनी पूंजी का संवर्धन करना होगा. गुणवत्ता का संवर्धन हमारे अपने व्यवहार, अपने आचरण, अपने संबंध से जुड़ा हुआ है. गुणवत्ता कोई निरपेक्ष मूल्य नहीं है. वह सापेक्ष अपनी परिस्थिति और जीवन की चुनौतियों के अनुरूप ही होती है. सीखने की संस्कृति गुणवत्ता के लिए हमको एक जगह प्रदान कर सकती है.

इस बात से किसी की असहमति नहीं होगी कि शिक्षा बहुमूल्य हो, उपयोगी हो, काम लायक हो और अच्छा आदमी भी बनाए. आज गंभीर आत्मनिरीक्षण की आवश्यकता है और अपनी कमियों को पहचान कर साहसी कदम उठाने की जरूरत है ताकि शिक्षा भार न बने. ■■